''वैदिक कालीन शिक्षा दर्शन में अद्वैतवाद की अवधारणा का अध्ययन''

गुंजन फौजदार (शोधार्थी) शिक्षा विभाग, श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़ (राज.)
डॉ. अनिता सिंह (शोध निर्देशक) शिक्षा विभाग, श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़ (राज.)

बहुदेव से एकदेववाद की ओर बढ़ने के दौरान विभिन्न देवताओं में सेकिसी एक शक्तिशाली देवता को सर्वोच्च पद प्रदान किया गया। पहले वहस्थान वरूण को मिला। उसे 'ऋतस्य गोपा' तथा प्राकृतिक नियमों का संरक्षकमाना गया। उसके विधान को सभी देवताओं को मानना पड़ता था। लेकिन फिरइन्द्र को सर्वोपरि माना गया और बाद में प्रजापति को, तथापि इनमें से कोई भीसर्वोच्च ब्रह्म की धारणा को व्यक्त नही ं कर पाया। इस ओर प्रयास जारी रखागया और अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सब जीवों, प्रकृति एवं सब देवताओंके पीछे एक ही शक्ति है। जिससे ये अद्भतू हुए है। कुछ विद्वान यह भी मानतेहैं कि एक देव को प्रकृति से अलग नहीं कहा जा सकता बल्कि विभिन्न देवों मेंभी एक देव को देखते थे। एवं विविध नामों से पुकारते थे। इस तरह वेदों कासंदेश बहुदेववाद का नही ं है। अनेक देवताओं की पूजा को एक देव की पूजा हीमाना जाता था। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में कहा गया है कि– प्रबुद्धजन उसएक ब्रह्म का अनेक रूप में वर्णन करते हैं। उसे इन्द्र, मित्र या वरूण कहते हैंवही अग्नि, यम, एवं मातरिश्रवा है।

''इन्द्र मित्र वरूण अग्नि माहुरथों दिव्यः सः सुवर्णों गुरूत्मान एक सद्रिप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यम मातरिश्वान माहुः''

एकत्व की धारणा के अन्तर्गत अनेक देवताओं के सामान्य विशेषणों केआधार पर सर्वोच्च ईश्वर की कल्पना भी की गई अर्थात् सभी देवताओं कोबनाने वाला एक सर्वोच्च ईश्वर है। इस सर्वोच्च ईश्वर में सभी देवताओं केसामान्य गुण विद्यमान होने चाहिए। अतः विशेषण के अनुरूप सर्वोच्च ईश्वर कीकल्पना करके उस पर व्यक्तित्व का आरोपण कर दिया गया। इस तरहविश्वकर्मा (सबको बनाने वाला) शब्द प्रारम्भ में इन्द्र एवं सूर्य के विशेषण के रूप में प्रयुक्त किया जाता था। जो तदन्तर सर्वोच्च देवता के रूप में स्वीकार करलिया गया। इसी प्रकार प्रजापति (जीवों का स्वामी) जो आरम्भ में सवितृ (सूर्यका एक रूप) का विशेषण था, इन्हें बाद में एक अलग देव के रूप में मान लियागया जो सृष्टिकर्ता थे।

देवताओं में ही एक सर्वोच्च देवता को ढूंढने के अतिरिक्त उनके पीछे कार्य करने वाली सामान्य शक्ति को खोजने का प्रयत्न किया गया। प्रकृति कीविविध घटनाओं का एक मूल कारण है, जिसके अनुसार एक ही विराट पुरूष सेसम्पूर्ण विश्व उत्पन्न एवं विकसित हुआ है। प्रकृति की समस्त घटनाओं का परिचालन एक मूल कारण द्वारा होता है। लेकिन उसका स्वरूप निर्धारण नहींकिया जा सके।

वैदिक काल में एकत्व की अवधारणा मूल रूप में नासदकीय सूक्त मेंदेखने को मिलता है। अर्थात् इसमें 'निर्गुण ब्रह्म' की कल्पना की गई। इसप्रकार उपनिषदों में जिस एकवादी (अद्वैतवाद) धारणा का विकास हुआ, इसकामूल स्वरूप नासदकीय सूक्त में विद्यमान था।

वैदिक दर्शन में वदे से लेकर उपनिषद तक अद्वैतवाद का ही विकासहुआ है। वेदों में प्राकृतिक मानवीकृत बहुदेवाद की कल्पना, कोरी कल्पना है।वैदिक देवता–गण एक ही देवता की विभिन्न शक्तियों के प्रतीक है। देवताओंकी 'असुर' अर्थात् 'प्राणवान्' 'बलवान', अप्रतिहत सामर्थ्य–सम्पन्न माना गया हैऔर उनके असुरत्व को स्पष्टतया एक ही स्वीकार किया गया है।

वेदों में सर्वव्यापी, सर्वात्मक और परात्पर देव तत्व एक ही है तथा विविध देवगण इसी की शक्तियों के विविध रूप है। यह सर्वान्तर्यामी सूत्रात्मा है। यहविश्वनियन्ता है। वेदों के ये वाक्य निश्चय ही वहुदेववाद के पोषक नहीं है। जबवहुदेववाद, एकेश्वरवाद में विकसित होता है, तो देवमण्डल के सर्वाधिकशक्तिमान् दवे को ही 'देव' या 'ईश्वर' के रूप में स्वीकार किया जाता है। किन्तुवेदों में तो ऐसा नहीं हुआ है। पुनश्च, मैक्समूलर महोदय को 'हीनोथीज्म' शब्दनिर्मित करने का कष्ट करने की अपेक्षा यह स्वीकार कर लेना चाहिए था किविविध देव, 'पर देव' के ही विविध प्रतीक है, अतः जब किसी देव की स्तुति कीजाती है, तो वह स्तुति वस्तुत 'पर देव' की शक्ति की ही होती है। यह 'परतत्व' वास्तव में वैदिक दर्शन में संहिता से लेकर उपनिषद तक इसी 'अद्वैतवाद'का विकास हुआ है। अपने मत की पुष्टि में हम वेदों के निम्नांकित उद्धरणप्रस्तुत कर रहे हैं। जेसे–ऋग्वेद के पहले मण्डल में कहा गया है कि–

''वह प्रकाश मान अपरिमेय तत्व अदिति है। अदिति ही आकाश है, अंतरिक्ष है, माता है, पिता है, पुत्र है, समस्त देव–मण्डल है, सारा मानव समुदायहै, जो कुछ उत्पन्न हुआ है, और जो भी उत्पन्न होने वाला है, वह अदिति हीहै।''

ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में अद्वैतवाद की कल्पना इस प्रकार की गई है, जैसे–

 Copyright @ 2024 Author

''सृष्टि के आदि काल में न सत् था न असत् न वायु था न आकाश.....न मृत्यु थी न अमरता; न रात थी न दिन, उस समय केवल वही एक था जोवायु रहित स्थिति में भी अपनी शक्ति से साँस ले रहा था; उसके अतिरिक्त कुछनहीं था।''

ऋग्वेद के दसवें मण्डल में आया है कि– ''जो कुछ है, जो कुछ था औरजो कुछ होगा वह पुरूष है।''

''पुरूष एवेदं सर्व यद् भूतं यच्च भवयम्''

अथर्ववेद में उल्लेख आया है कि–

''वह इस जगत् का आत्मा, निष्काम, आत्मनिर्भर, अमर, स्वयं सिद्ध,आनन्दमय, सर्वश्रेष्ठ, सदैव युवा और शाश्वत है उसके ज्ञान से ही मृत्यु परविजय प्राप्त किया जा सकता है।''

इसी अद्वैतवाद के आधार पर वाद में ब्राह्मण ग्रंथों में आत्मा और ब्रह्मतथा इन दोनों की एकता का विचार मिलता हैं जो उपनिषदों में विकसित होकरसमस्त भारतीय दर्शन का मूल तात्विक विचार बन जाता है। इस प्रकार वेदकेवल आदिमयुगीन धर्मग्रन्थ ही नहीं है, बल्कि उनमें वाद की भारतीय दार्शनिकविचार धाराओं के मूल सूत्र भी विद्यमान है।

वेदान्त का शाब्दिक अर्थ है, 'वेद का अंत' अथवा' वैदिक विचारधारा कीपराकाष्ठा''। यह शब्द 'उपनिषद' के अर्थ में आता है। क्योंकि उपनिषद वैदिकवागमय के अंतिम भाग है या वेदों में प्रारम्भ हुई, दार्शनिक विचारधारा इसमें परिपक्व रूप प्राप्त कर लेती है। इसीलिए वेदान्त का अर्थ है, 'वह शास्त्र'जिसके लिए उपनिषद ही प्रमाण है। इस प्रकार वर्तमान में वेदान्त दर्शन के तीनआधार है, जैसे– उपनिषद, ब्रह्मसूत्र और भग्वद्गीता। इन्हें वेदान्त दर्शन की''प्रस्थानत्रयी'' कहा जाता है। इन्हें क्रमशः श्रुतिप्रस्थान, न्यायप्रस्थान, औरस्मृतिप्रस्थान कहा जाता है। भारतीय दर्शन में अद्वैतवाद का नाम आते हीशंकराचार्य का नाम जिह्वापटल पर दौड़ जाता है। प्रस्थानत्रयी के व्याख्याकारों में शंकराचार्य का नाम अग्रणी है उन्हांने प्रस्थानत्रयी की बौद्धिक एवं दार्शनिकव्याख्या किया। उग्र बुद्धिवाद, कठोर तर्क, धार्मिक प्रभाव से स्वातन्त्रय उनकेअद्वैतवाद की मुख्य विशेषताएँ हैं।

शंकराचार्य के अद्वैतवाद के अनुसार पारमार्थिक दृष्टि से ब्रह्म ही एक मात्रसत् है, जगतमिथ्या है और जीव ब्रह्म से अभिन्न है।

''ब्रह्म सत्यं जगन्मिथया जीवो ब्रह्मैव नापरः''

अद्वैत वेदान्त के अनुसार 'सत्' वह है जिसका त्रिकाल में वाध नहीं हो सके। जैसे–

''त्रिकालाऽवाध्यत्वं सत्यम्''

अर्थात् जो कूटस्थ, नित्य, और सदा एक रस एवं अपरिणामी हो। इस अर्थ में ब्रह्म या आत्मा ही 'सत्' है और वही परमार्थ है। 'असत' वह है जिसकीत्रिकाल में कोई सत्ता न हो और जिसमें कभी 'सत्' के रूप में प्रतीत होने का सामर्थ्य भी न हा। इस अर्थ में वन्ध्यापुत्र आदि असत् है वेदान्त दर्शन में 'सत्'और 'असत्' शब्द अपने आत्यंतिक अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं।

किन्तु हमारे समस्त लौकिक अनुभव में कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जिसेहम वेदान्त के अनुसार 'सत्' या 'असत्' कह सके। 'सत्' ब्रह्म हमारे लौकिकअनुभव के ऊपर है असत् या तुच्छ वन्ध्यापुत्रादिक लौकिक अनुभव के नीचे है।अतः हमार` लौकिक अनुभव का सारा क्षेत्र सद्सद्निर्वचनीय पदार्थों तक सीमितहै।

शंकराचार्य का 'अद्वैतवाद' भारतीय विचारधारा में 'दर्शन शिरोमणि' कहाजाता है। विलियम जेम्स का कथन है कि ''भारत का वेदांत दर्शन संसार केसभी अद्वैतवादों का शिरोमणि है।'' अद्वैतवाद का सकारात्मक प्रभाव भारतीयसंस्कृति पर पड़ा। अद्वैतवाद के आध्यात्मिक एवं नैतिक आदर्श ने अतीत कालसे आज तक भारतीय संस्कृति को सुरक्षित रखा। भारतीय संस्कृति के निर्माण मेंअद्वैत दर्शन के अभदे –दृष्टि की महती भूमिका रही है। शंकराचार्य ने 'ब्रह्म' कीएक मात्र सत्ता का प्रतिपादन करके जगत्–प्रबंध को मिथ्या एवं जीव कोपरमार्थतः ब्रह्म घोषित किया। शंकराचार्य के इस सिद्धातं से व्यवहारिक रूप में''अनेकता में एकता'' एवं ''समष्टि–दृष्टि'' की शिक्षा मिलती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

- मत्स्यपुराणम् – गौड़, पं. कालीचरण एवं वस्तीराम जी (टीकाकार), चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2006
- स्कन्ध पुराण – गीता प्रेस, गोरखपुर, 2008
- छान्दोग्योपनिषद् – गीता प्रेस, गोरखपुर, 2008
- पारस्करागृहसूत्रम् – मिश्र, डॉ. जगदीश (हिन्दी साहित्यकार), चौखम्बा सुभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2008

 Copyright @ 2024 Author

ISSN: 2278-4632
Vol-14, Issue-9, No.02,September: 2024

- कठोपनिषद् – आर्य, अर्जुन देव (भाष्यकार), पंचषील प्रकाषन, जयपुर, 2008
- अथर्ववेद – शास्त्री, सत्यवार (सम्पादक), डी.पी.बी. प्रकाशन, दिल्ली, 2009
- कौटिलीयम् अर्थषास्त्रम् – गैरोला वाचस्पति (अनुवादक), चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2009
- मनुस्मृति – सक्सेना, सुरेन्द्रनाथ (अनुवादक), मनोज पब्लिकेशन, दिल्ली, 2012
- यजुर्वेद भाष्यम् –सरस्वती,, स्वामी दयानन्द, श्रीमती सुशीला रानी (अनुवादक), वैदिक मंत्रालय, अजमेर, 2016

Copyright @ 2024 Author